# महाशक्ति में समाने का शिव संकल्प एवं महाशक्ति का महातप

*महाशक्ति की लोकयात्रा*

## महाशक्ति में समाने का शिव संकल्प एवं महाशक्ति का महातप

क्या गुरुदेव अपनी जीवन लीला को समेटने की तैयारी में थे ?

सूक्ष्मीकरण साधना के बाद से ही परमपूज्य गुरुदेव शांतिकुंज सहित संपूर्ण युग निर्माण मिशन को सर्वथा नए आयाम में पहुंचाने में जुटे थे। इसके लिए उन्होंने अपने लेखन, साधना आदि नियमित कार्यों के साथ कार्यकर्ताओं  को तरह-तरह से प्रशिक्षित करना शुरू कर दिया था। सारे दिन एक के बाद एक गोष्ठियां चलती रहतीं। इन गोष्ठियों में वह भविष्य में होने वाले कार्यों का खुलासा करते, नई योजनाएं बनाते व समझाते। यह भी बताते कि उनके न रहने पर मिशन का किस तरह से विस्तार होगा। यह कैसे व किस ढंग से चलेगा। सारे

कामों को करते हुए वह इन दिनों नई-नई पुस्तकों के रूप में **क्रांतिधर्मी साहित्य** का भी सृजन कर रहे थे। इस भावस्पर्शी साहित्य का सृजन, उनके नियमित लेखन से अलग था।

क्रांतिधर्मी साहित्य पुस्तक माला की 20 पुस्तकों एवं ऑडीओबुक्स के लिए आप इस लिंक

को क्लिक कर सकते हैं। इस लिंक में गुरुदेव स्वयं लिखते हैं :

"बेटे, क्रांतिधर्मी साहित्य मेरे अब तक के सभी साहित्य का मक्खन है। मेरे अब तक का साहित्य पढ़ पाओ या न पढ़ पाओ, इसे जरूर पढ़ना। इन्हें समझे बिना मिशन को न तो तुम समझ सकते हो, न ही किसी को समझा सकते हो।"

“बेटे ! ये इस युग की युगगीता है। एक बार पढ़ने से न समझ आये तो सौ बार पढ़ना। जैसे अर्जुन का मोह गीता ज्ञान प्राप्त करने के बाद भंग हुआ था, वैसे ही तुम्हारा मोह इस युगगीता से भंग होगा।

“हमारे विचार बड़े पैने हैं, तीखे हैं। हमारी सारी शक्ति हमारे विचारों में समाहित है। दुनिया को हम पलट देने का जो दावा करते हैं, वह सिद्धियों से नहीं, अपने सशक्त विचारों से करते हैं। आप इन विचारों को फैलाने में हमारी सहायता कीजिए। हमको आगे बढ़ने दीजिए, सम्पर्क बनाने दीजिए।”

“मेरे जीवन भर का साहित्य शरीर के वजन से ज्यादा भारी है। यदि इसे तराजू के एक पलड़े पर रखें और क्रांतिधर्मी  साहित्य को (युग साहित्य को) एक पलड़े पर, तो इनका वजन ज्यादा होगा।”

इन वर्षों में गुरुदेव की समस्त गतिविधियां तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम हो चली थीं। इस उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तीव्रता को देखकर भक्ति संवेदना से स्पंदित हृदयों को सहज ही अनुमान लगने लगा था कि भगवान शिव अपनी लोक लीला का संवरण करते हुए महासमाधि में लीन होने की तैयारी कर रहे हैं।

शक्ति-स्वरूपा माताजी गुरुदेव के शिव संकल्प से अवगत थीं। उन्हें भली प्रकार मालूम था कि सत्य के मूर्तिमान स्वरूप गुरुदेव के संकल्प व योजनाएं कभी मिथ्या नहीं हो सकतीं। वह स्वयं भी उनकी योजनाओं के प्रति पूर्णतया समर्पित थीं। फिर भी उन्हें इतना कठिन रम करते हुए देखकर उनका मातृ-हृदय व्याकुल  हो उठता था। एक दिन इसी तरह गुरुदेव सुबह का लेखन एवं उसके बाद कार्यकर्त्ताओं की गोष्ठियां लेने के बाद दोपहर में फिर से लिखने बैठ गए। लगातार

विभिन्न कार्यों के साथ लेखन करते हुए उनकी आंखें लाल हो गईं। शरीर के कष्ट तो सभी को होते हैं, फिर वह चाहे अवतारी सत्ता ही क्यों न हो।  उस दिन अत्यधिक एवं लगातार लेखन करने के कारण गुरुदेव की आंखें एकदम लाल दिखने लगी थीं। इसके बावजूद वे देह-बोध से रहित, परमहंस महायोगी की तरह शाम तक यथावत् लेखन करते रहे। शाम को जब माताजी अपने दिन के सारे कामों को निबटाकर नीचे से ऊपर पहुंचीं, तो उन्होंने गुरुदेव की इस दशा को देखा तो वह विह्वल हो गईं।

भाव-बिन्दुओं से भरी हुई आंखों के साथ उन्होंने गुरुदेव के सारे कागज समेटकर एक साथ एक जगह रखे। उन्हें अपने हाथों से एक गिलास पानी पिलाया और उनसे पूछने लगीं, आप इतना अधिक श्रम क्यों करते हैं? इस

प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव कुछ देर तो चुप रहे, फिर थोड़ा मुस्कराते हुए बोले,

**“दरअसल हम अपने जाने के पहले मिशन की गाड़ी को खूब जोर का धक्का लगा देना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि यह धक्का इतनी जोर से लगे कि मिशन सैकड़ों सालों तक आराम से चलता रहे। इसमें कोई बाधा न आए। अपने बच्चे इस मिशन की गाड़ी में बैठकर केवल स्टियरिंग ही संभाले रहें, उन्हें कुछ खास न करना पड़े,सब कुछ अपने ही आप इत्मीनान से होता चला जाए।”**

गुरुदेव के इन शब्दों से माताजी यह स्पष्ट आभास हो गया कि उनके भावमय भगवान् अपनी लोकलीला को पूरी तरह से समेट लेने के लिए संकल्पित हैं। इस सत्य से अवगत माताजी इन दिनों मिशन के सामान्य काम-काज के साथ अपने घर-परिवार की भी जिम्मेदारियां

निबटाने के लिए प्रयत्नशील थीं। उनकी सुपौत्री गुड़िया (मंदाकिनी) बड़ी हो चुकी थी। उसके लिए वह सुयोग्य वर की तलाश कर रही थीं। सुपौत्री मंदाकिनी एवं नाती  चीनू (चिन्मय) ये दोनों बच्चे अपने छुटपन से माताजी के साथ ही रहे थे।

इन्होंने प्रायः अपना सारा बचपन माताजी की गोद में और गुरुदेव के आसपास खेलकर बिताया था। गुड़िया उनके शांतिकुंज आगमन के कुछ ही समय बाद मथुरा से

उनके पास आ गई थी और चीनू का आना जीजी  एवं डॉ. साहब के साथ ही हुआ था। उन्होंने स्वयं के साथ ही अपने शिशु को भी माताजी एवं गुरुदेव को सौंप दिया था। इन बच्चों की सारी परवरिश माताजी की वात्सल्य छाया में ही हुई। इन्हें पाल-पोसकर बड़ा करने व संस्कारवान बनाने का दायित्व उन्होंने स्वयं निभाया। बड़े होने पर गुड़िया के लिए वर की तलाश भी उन्होंने की। डॉ. साहब ने स्नेहशील अभिभावक की भांति इस कार्य में माताजी का हाथ बंटाया। अंततः 20 फरवरी 1989, माघ पूर्णिमा  के दिन गुड़िया (मंदाकिनी) सादगीपूर्ण  वातावरण में माताजी के गले लगकर अपने  ससुराल  विदा हुई।

इसके बाद 1989 के शेष महीनों में गुरुदेव के कार्यों की तीव्रता यथावत् बनी रही। इस वर्ष के अंत तक प्रायः संपूर्ण क्रांतिधर्मी साहित्य प्रकाश में आ गया। इन दिनों

वह बातचीत के क्रम में यह जता दिया करते थे कि वह सूक्ष्मजगत् के परिशोधन के लिए अब पूरी तरह से सूक्ष्मलोक में डेरा जमाएंगे। ऐसे ही वर्ष 1989 के अंतिम महीनों में एक दिन वह अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे, लेटे हुए बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा,

**“जैसे लोग अपना कुर्ता उतारते हैं, वैसे ही मैं यह स्थूल शरीर उतारकर फेंक दूंगा।" यह जिज्ञासा करने पर कि इसके बाद फिर वह कहां रहेंगे? उत्तर में उन्होंने कहा, “और कहां? सारा काम करते हुए मैं एक अंश से माताजी के भीतर रहूंगा।” उनकी इन रहस्यमयी बातों में एक रहस्यपूर्ण सत्य था।”**

28 जनवरी 1990 वसंत पंचमी  को परम पूज्य गुरुदेव ने अखंड ज्योति में एक पत्रक लिखा “महाकाल का संदेश।” जिसे हम यथावत प्रस्तुत कर रहे हैं :

"यह युगसंधि के बीजारोपण का वर्ष हैं। अभी जो रूप दिखाई दे रहा है यह छोटा है, वह अगले दिनों विशालकाय बोधिवृक्ष का रूप लगा ।अब से लेकर सन् 2000 तक के दस वर्ष जोतने, बोल उगाने, खाद-पानी डालने और रखवाली करने के हैं। इस वसंत से इक्कीसवीं सदी के आगमन की उलटी गिनती 'काउंट डाउन' प्रक्रिया से आरंभ हो चुकी हैं। ऋषिकल्प इस सत्ता के जीवन रूपी दुर्लभ ब्रह्मकमल के अस्सी पुष्प पूरी तरह खिल चुके। सूत्र- संचालक सत्ता के इस जीवन का प्रथम अध्याय पूरा हुआ। यह दृश्यमान स्वरूप था, जिसमें 'जो बोया सो कोटा' की नीति अपनाई गई। अब जीवन का दूसरा अध्याय आरंभ होता है। सूक्ष्म व कारण इन दो शरीरों का प्रयोग एक शताब्दी तक किया जाना हैं। यहाँ से लेकर सन् 2001 के वसंत पर्व तक की अवधि में, विगत दो हजार वर्षों से जमी हुई गंदगी बुहारकर साफ

**कर दी जाएगी एवं उज्ज्वल भविष्य की नवयुग की आधारशिला रखी जाएगी।”**

हमारे पाठक इस पत्रक को अखंड ज्योति फ़रवरी 2000 के पृष्ठ 38 पर भी देख सकते हैं। इस पत्रक में गुरुदेव ने अपने भावी क्रियाकलापों को स्पष्ट किया था। अपनी इसी योजना के अनुरूप वह वसंत पंचमी 1990 के दिन ही प्रणाम के बाद से पुनः परिपूर्ण एकान्त में चले गए। अब वह अधिक दिन स्थूल देह में नहीं रहेंगे, यह अहसास प्रायः सभी संवेदनशील हृदयों को हो चला था। सभी विकल किंतु विवश थे। भावमयी माताजी का समर्पण अडिग था। गुरुदेव के भौतिक जीवन के प्रति भी अविरल एवं असीम अनुराग के होते हुए भी वह उनके संकल्प के प्रति समर्पित थीं। अपने आराध्य की इच्छा ही उनकी अपनी इच्छा थी। अपनी

असह्य आंतरिक विकलता को किसी तरह दबाए हुए वह दैनिक काम-काज में संलग्न रहती थीं।

अप्रैल 1990 के अंतिम दिनों में माताजी ने शांतिकुंज की गोष्ठी में गुरुदेव द्वारा किए गए स्थूल देह त्याग के शिव संकल्प को संकेतों में, लेकिन स्पष्ट रीति से समझाया। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि गुरुदेव ने उनसे यह भी कहा है, **"मेरे देह त्याग देने के बाद तुम सौभाग्य- सिंदूर का त्याग न करना।"** माताजी ने यह बताते हुए स्पष्ट किया कि गुरुदेव ने मुझसे यह कहा है कि तुम ठीक उसी तरह से अपने सौभाग्य-सिंदूर को धार किए रहना जैसा कि पिछली बार तुमने माँ शारदा के रूप में किया था । उसी तरह लड़कों की देख-भाल करती रहना। कुछ ही वर्षों में ये लड़के सक्षम हो जाएंगे, तब तुम भी देह का झंझट उतार फेंकना।

माताजी की इन बातों को सुनकर सुनने वालों के दिल बिलख उठे। बैठे हुए लोगों में से कोई कुछ नहीं बोला। बस एक गहरी चुप्पी छाई रही। मुश्किल से कोई-कोई इतना सोच पाया कि लगता है गुरुदेव ने माताजी से सौभाग्य सिंदूर न त्यागने के लिए इस कारण कहा है कि कहीं महालक्ष्मी के सौभाग्य चिह्न त्याग देने से समूचा विश्व सौभाग्यहीन न हो जाए।

वह दिन बीता, उसके बाद कई दिन बीते। अपने द्वारा निश्चित की गई तिथि एवं निर्धारित किए गए समय के अनुसार गायत्री जयंती 2 जून, 1990 को प्रातः 8 बजे के लगभग गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया। उनकी अंतर्चेतना महाशक्ति में लीन हो गई। माताजी उस समय उन्हीं के द्वारा किए गए आदेश के अनुसार प्रवचन मंच पर थीं। संपूर्ण सत्य से अवगत होते हुए भी उन्होंने दिन के सभी कार्य पूर्णतः संतुलित रहकर निर्धारित क्रम

के अनुसार पूरे किए। शाम को सूर्य अस्त होने से पहले महायोगी गुरुदेव की तपःपूत देह उनके जीवन-यज्ञ की पूर्णाहुति के रूप में अग्नि को समर्पित हुई। देह के भस्म होने के साथ अग्नि का तेज और ताप, पूज्य गुरुदेव के परम तेज के साथ वंदनीया माताजी में समा गया। वह अविचल भाव से अपने प्रभु से हुए भौतिक वियोग को सहते हुए महातप के लिए प्रवृत्त हुईं।

परम पूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण को लेकर हमने कितने ही विस्तृत लेख लिखे हैं , यह सब हमारी लेख हमारी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। पाठक सर्च window में "महाप्रयाण" शब्द से यह लेख ढूंढ सकते हैं।

पार्थिव शरीर के समीप दुःखदायी क्षण
जितेन्द्र रघुवंशी

माताजी द्वारा अब तक जो कुछ भी तपश्चर्या व योग-साधना की गई थी, वह सब अपने प्रभु के आदेश व उन्हीं के सान्निध्य में हुई थी। बीच में जो वियोग के पल आए थे, वे सीमित थे। विश्वास था कि प्रभु गए हैं, तो आएंगे भी। उनके आने की अवधि प्रायः निश्चित थी। अपने आराध्य के सान्निध्य में अथवा उनके लौट आने की आशा में सहा गया महाकष्ट भी वंदनीया माताजी के लिए आनंददायी था। महाकंटकों को भी उन्होंने सुकोमल पुष्पों की भांति समझा था। असह्य वेदना भी परमपूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में घुलकर माताजी के लिए आह्लादकारी बनती गई थी। पिछले जीवन की लंबी अवधि में उन्होंने बहुत कुछ सहा था। जीवन में कई तरह के संकटों को सहते हुए उन्होंने कठोर तप साधनाएं की थीं। उनकी सहनशक्ति इतनी अगाध और असीम थी कि गुरुदेव उन्हें **'सर्वसहा'** कहने लगे थे। वह

कहा करते थे कि माताजी सर्वकष्ट सहिष्णु हैं। वे सब कष्टों-संकटों को बड़ी आसानी से हंसते-हंसते सह जाती हैं। उन सर्वसहा को भी भौतिक वियोग का यह महातप असह्य लगा रहा था।

इस असह्य कष्ट  को भी माताजी  हंसकर सह रही थीं, उन्हें स्वयं को संभालने के साथ, अपनी अनेकों  शिष्य-संतानों को भी संभालना था। प्रेममूर्ति गुरुदेव के न रहने का दुःख सभी को था, सबके मन भीगे हुए और भारी थे। इनमें से कई तो ऐसे थे, जिनकी आंखों से महीनों आंसुओं की झड़ियां लगी रहीं। उनकी भावुकता इन्हें हर पल भिगोती थी। इन्हें समझ में ही नहीं आ रहा था कि अब कैसे जिएं? आज इन बातों में हो सकता है, किसी को विचित्रता या अतिशयोक्ति लगे, पर जिन्होंने गुरुदेव को देखा है, उन्हें छुआ है, उनके प्रेम को पिया है, उनके सान्निध्य में दो-चार घड़ी बिताई हैं, उन सभी को इन

बातों में सच और केवल सच के अलावा अन्य किसी तत्व  की प्रतीति न होगी। जब सामान्यजनों की यह स्थिति थी, तो भावमयी माताजी की विह्वलता व विकलता की कल्पना करना सामान्यजन-मन के लिए पूरी तरह से अकल्पनीय है। अपनी इस असीम वेदना को सहती हुई वे उन दिनों भी नियमित प्रणाम में बैठ रही थीं। उनके मिलने- जुलने का क्रम भी पहले की ही तरह निश्चित व नियमित था। अपने बच्चों के लिए उनका प्यार-दुलार व उन पर आशीषों की अजस्र वर्षा अब पहले से भी ज्यादा बढ़ गई थी।

लगातार विस्तार करते मिशन की अनेकों  जिम्मेदारियों को निभाते हुए विश्व जननी, विश्वकल्याण के लिए अहर्निश तप कर रही थीं। बीच-बीच में वह अपने भावुक और नादान बच्चों को भी धीरज देती थीं, उन्हें दुलराती व पुचकारती थीं। पिता के न होने पर मां का

अपनी संतानों के प्रति प्रेम और भी ज्यादा सघन और सजल हो गया था। इन्हें प्यार करते हुए वह जब-तब अपना उदाहरण देते हुए यह भी समझाती थीं कि “देखो सहा कैसे जाता है, सहिष्णुता क्या होती है और यह जीवन के लिए कितनी आवश्यक है, उच्चस्तरीय जीवन के उद्देश्यों के लिए कष्ट सहने का दूसरा नाम ही तपश्चर्या है, जो सहिष्णु है वही तपस्वी हो सकता है। जो सच्चा तपस्वी है, सहिष्णुता अपनेआप ही उसका स्वभाव बन जाएगी। इन दिनों कभी-कभी तो वह यह भी कहती थीं, जिसने सहन करने की कला सीख ली, समझो उसने जीवन जीना सीख लिया। उनकी इन बातों में उनके निजी जीवन की अनुभूति घुली थी।

अपनी अनुभूति का अमृत पिलाने के लिए माताजी कभी-कभी उन कार्यकर्ताओं को अपने पास थोड़े समय

के लिए बुला लेती जो इन दिनों बड़े विकल और बेचैन थे।

ऐसे ही एक कार्यकर्त्ता को उन्होंने गुरुदेव के न रहने के दो महीने बाद अपने पास बुलाया। यह इन दो महीनों में ठीक से सो न पाया था। उसके जीवन के दैनिक काम-काज बिखर गए थे। गुरुदेव का अभाव उसके लिए असह्य था। अब क्या होगा, कौन करेगा उसकी जिंदगी की सार-संभाल। इस तरह के  प्रश्न- कंटक उसे बुरी तरह से चुभ रहे थे। विकल वेदना से ग्रस्त  इन्ही दिनों में उसने एक रात अर्द्धनिद्रा में स्वप्न में देखा कि वह लेटा हुआ है और वंदनीया माताजी अपनी गोद में उसका सिर रखे हैं। वह अपने हाथों को बड़े ही प्रेमपूर्ण ढंग से उसके सिर पर सहलाते हुए कह रही हैं, “परेशान न हो, मौका मिलने पर मैं तुझे अपने पास बुलाऊंगी।”  स्वप्न के ये पल इतने ही थे, परन्तु यह पल  न जाने कैसे जादू

भरे थे कि स्वप्न देखने वाले को दो महीनों में शायद पहली बार ठीक से नींद आई। स्वप्न बीतने पर भी उसकी अनुभूति यथावत् रही । एक दिन दोपहर को वंदनीया माताजी ने सचमुच उसे अपने पास बुला लिया। इस बुलावे पर उसे तब अचरज हुआ, जब माताजी ने स्वप्न की भाषा यथावत् कह सुनाई। अपनी बातों के क्रम में वह कहने लगीं, बेटा, अपने बच्चों को दिलासा देने के लिए मां उनके पास नहीं जाएगी, तो और भला कौन जाएगा। फिर बोलीं, प्रेम बहुत बड़ी चीज़ है, लेकिन उससे भी बड़ी एक और चीज है— कर्तव्य । हम जिससे भी प्यार करते हैं, जिसके प्रति हमारी गहरी श्रद्धा है, उसके आदेश को मानकर, उससे हुए वियोग की पीड़ा को सहते हुए यदि हम उसके द्वारा बताए गए कर्तव्य का सतत पालन करते हैं, तो यह महातप है । ऐसा महातपस्वी किसी भी पीड़ा, कष्ट,

परेशानी, दुनिया के लोगों की दुनियादारी भरी बातों से किसी भी तरह विचलित नहीं होता। क्षुद्र बुद्धि के उलाहने उसे तनिक भी डिगा नहीं पाते। माताजी की इन बातों में उनके महातप की व्याख्या थी ।

इन बातों के क्रम में उन्होंने बताया, गुरुदेव का महाप्रयाण किसी सामान्य व्यक्ति की भांति नहीं है । उन्हें अपने विशेष काम के लिए शरीर छोड़कर जाना पड़ा है। वह अभी भी परमवीर महानायक की भांति अपने मोर्चे पर कुशलता से डटे हैं। विनाशकारी आसुरी शक्तियों को वह कड़ी टक्कर दे रहे हैं। हम सबको पवित्र जीवन जीते हुए, उनके प्रति परिपूर्ण श्रद्धा व समर्पण रखते हुए अपने कर्तव्य को निभाना है। यही हम लोगों की तपस्या है। उनकी इन बातों को सुनते हुए, सुनने वाले की आंखों के सामने वह दृश्य प्रत्यक्ष हो गया, जब वंदनीया माताजी ने परमपूज्य गुरुदेव के पार्थिव शरीर

को अंतिम प्रणाम करते हुए अपने महातप का संकल्प लिया था। वोह बड़े ही भावपूर्ण क्षण थे । माताजी के कमरे के बगल वाले हॉल में गुरुदेव के पार्थिव शरीर को उठाने की तैयारी हो रही थी। एक पल पहले बिलख रहीं माताजी के मुखमंडल पर यकायक दृढ़ता की अनोखी दीप्ति छा गई, वह धीमे कदमों से उठीं। उन्होंने गुरुदेव के माथे पर तिलक लगाया और चरणों में प्रणाम करते हुए धीमे, किंतु दृढ़ शब्दों में कहा,

**"हे प्रभु! मैं अपनी अंतिम सांस तक सभी कुछ सहकर आपके काम को करती रहूंगी। आपके आदेश का पालन करूंगी।"**

माताजी की बातों में आज भी वही दृढ़ता थी। उनकी वाणी ने सुनने वालों को सचेत किया। वह अपनी भावनाओं से उबरा । माताजी उसे समझा रही थीं, भक्ति कोरी भावुकता नहीं है। यह रोते-बिलखते रहकर

अकर्मण्य बनकर पड़े रहने का नाम नहीं है। भक्ति अपने भगवान् के आदेश पर तिल-तिल गलते हुए, क्षण- क्षण जलते हुए, सब कुछ सहते हुए  मिटने का नाम है। ऐसी भक्ति सर्वसमर्थ भगवान् को भी विवश और विकल बना देती है। इस भक्ति से बड़ा और कोई महातप नहीं। इससे अपरिमित एवं अपार शक्ति स्फुरित होती है। भक्तिमयी मां अपनी संतान के समक्ष स्वयं के आदर्श को प्रस्तुत कर रही थीं। सर्वेश्वरी का यह कथन उन्हीं के अनुरूप था। इससे महाशक्ति की महिमा प्रकट हो रही थी।

***************